साहित्य में अदिवासी और पर्यावरण विमर्श

'ज्ञान, विज्ञान आणि सुसंस्कार यांसाठी शिक्षणप्रसार'
-शिक्षणमहर्षी डॉ. बापूजी साळुंखे

विवेकानंद कॉलेज
कोल्हापूर
NAAC Reaccredited 'A'
with CGPA -3.24 (in 3rd cycle)

ISSN : 2281-8848

VIVEK RESEARCH JOURNAL

A Biannual Peer Reviewed National Journal of Multi-Disciplinary Research Articles

A Special Issue on

साहित्य में अदिवासी और पर्यावरण विमर्श

March, 2023

अनुक्रम

Sr. No.	Title of Article	Author Name	Page No.
1	हिंदी आदिवासी साहित्य का स्वरूप, चुनौतियां और संभावनाएं	डॉ. अशोक मोहन मरळे	1-3
2	आदिवासी कविता में व्यक्त प्रकृति चिंतन	डॉ. आरिफ शौकत महात	4-7
3	संजीव की कहानी 'अपराध': अपराध के सांचों में कैद बेगुनाही की दास्तां	डॉ. दिपक जाधव 'अक्षर'	8-13
4	संजीव के कथा साहित्य में आदिवासी चेतना	डॉ. माधव राजप्पा मुंडकर	14-16
5	आदिवासी अधिकार हनन की दूब: पाँव तले की दूब	डॉ. दीपक रामा तुपे	17-19
6	आदिवासियों की दमित दासताँ : 'आदिवासी नहीं नाचेंगे'	डॉ.प्रवीणकुमार न. चौगुले	20-24
7	हिंदी में अनुदित कविताओं में अभिव्यक्त आदिवासी जीवन	डॉ. विनायक बापू कुरणे	25-28
8	आदिवासी नारी के जीवन को तबाह करती अंधविश्वास की 'डायन'	डॉ. सरिता बाबासाहेब बिडकर	29-31
9	डॉ. अनूप वशिष्ठ के गजलों में पर्यावरण विमर्श	डॉ. अलका निकम-वागदरे	32-35
10	हिंदी साहित्य में पर्यावरण विमर्श	1. प्रा. डॉ. नाजिम इसाक शेख 2. अश्विनी जगदीप थोरात	36-39
11	''मरंग गोडा नीलकंठ हुआ'' उपन्यास में विस्थापन तथा प्रदुषण विमर्श	प्रोफेसर डॉ. साताप्पा शामराव सावंत	40-42
12	"हिंदी के स्वातंत्र्योत्तर पहाडी आंचलिक उपन्यासों में चित्रित उत्सव पर्व त्यौहार"	प्रा. डॉ. मनीषा बाळासाहेब जाधव	43-48
13	समकालीन कविता में पर्यावरण प्रदूषण	डॉ. आर. पी. भोसले	49-51
14	हिंदी साहित्य में आदिवासी विमर्श	प्रा. डॉ. एम. ए. येल्लुरे	52-53
15	जनजाति समाज और पर्यावरण के संबंध का भौगोलिक अध्ययन	डॉ. संदीप रुपरावजी मसराम	54-57
16	"सुमित्रानंदन पंत का काव्य पर्यावरण चेतना के परिप्रेक्ष्य में"	डॉ. कृष्णात आनंदराव पाटील	58-59
17	हिंदी साहित्य में पर्यावरण विमर्श	डॉ. संतोष बबनराव माने	60-62
18	आदिवासी संवेदनाओं की दास्तां: 'जंगल जहा शुरू होता है'	डॉ. संतोष तुकाराम बंडगर	63-66
19	अल्मा कबूतरी (उपन्यास) : कबूतरा आदिवासी जाति की यथार्थ दासता	श्री. नीलेश वसंतराव जाधव	67-68
20	आदिवासी समाज की समस्याएं 'काला पादरी' उपन्यास के संदर्भ में	डॉ. रीना निलेश खिचडे	69-72

संजीव की कहानी 'अपराध': अपराध के सांचों में कैद बेगुनाही की दास्तां

डॉ. दिपक जाधव 'अक्षर'
हिंदी विभाग
वेणूताई चव्हाण कॉलेज, कराड
dipakjadhav.hindi@gmail.com

शोध सार

अपराध समाज से और समाज में जन्म लेता है और ठीक यही तथ्य अपराधी पर भी लागू होता है इसी के साथ यह भी जरूरी तथ्य है कि यह घटना सदा सर्वदा अपराध की श्रेणी में नहीं आती कई बार हम पाते हैं कि दो भिन्न वर्गों वर्णों द्वारा एक ही घटना को अंजाम देने पर भी एक अपराधी घोषित किया जाता है तो दूसरे को बचाने में सारी व्यवस्था जुड़ जाती है भले ही कानून के सामने सभी समान होने की बात स्वीकारी गई हो लेकिन वास्तविकता इससे भिन्न है इसे नकारा नहीं जा सकता। संजीव की कहानी अपराध एक संश्लिष्ट कहानी है जिसमें अपराधी घोषित किए सचिन के हाथों किसी प्रकार के अपराध या अपराधिक घटना का जिक्र नहीं है। उसकी पक्षधर था को ही अपराध के रूप में परिभाषित किया गया है। व्यवस्था जो अपराध एवं अपराधिक कृत्य उनके रोकथाम के लिए बनाई गई है- पुलिस प्रशासन सत्ता न्यायपालिका; खुलेआम अपराध की रोकथाम के नाम पर तथाकथित अपराधी के दमन में संलग्न दिखाई देती है व्यवस्था व्यवस्था की कमियों को छुपाने में लग जाती है संजीव की कहानी का पात्र सचिन अपनी पक्षधर था और साधन ही नेता के चलते व्यवस्था के हाथों फांसी पर झूल जाता है। सचिन की बहन मेडिकल की मेधावी छात्रा संघमित्रा जो नक्सलवाद और अपराधिक मानसिकता की विरोधी है, बड़ी संस्था से मारी जाती है। सत्ता हीनाकि शोषण की व्यवस्था का पक्षधर न होना ही उनका अपराध बन जाता है।

बीज शब्द: अपराध, नक्सलवाद, बुर्जुआ, पूंजीवाद, पुलिस, प्रशासन, न्याय व्यवस्था,

भूख में तनी हुई मुट्ठी का नाम नक्सलबाड़ी है

धूमिल के 'पटकथा' कविता की उपर्युक्त पंक्ति नक्सलवाद की भूमिका को स्पष्ट करती है। धूमिल नक्सलवाद को जागरूकता के रूप में देखते हैं, ठीक उसी प्रकार संजीव भी नक्सलवाद को सामाजिक पक्षधरता के रूप में व्याख्यायित करते हैं।

संजीव वर्तमान चेतना मुल्क कहानी का प्रमुख चेहरा है। साहित्य की सामाजिक उपयोगिता उनके लेखन का आधार है। समाज को अपनी आंखों से देख उसे कागज पर उतारना संजीव की खूबी है। उनकी अपराध कहानी अपराध की वजह की शिनाख्त करने वाली कहानी है। कहानी पाठकों की आंखों पर बंधी व्यवस्था की पट्टी को हटाकर उसे असलियत से वाकिफ कराने का काम करती है। कहानी नक्सलवाद एवं नक्सलवादी की मूल चेतना को उजागर करने के साथ ही पुलिस, प्रशासन एवं न्यायिक व्यवस्था का पोस्टमार्टम भी करती है। संजीव अपराध कहानी के माध्यम से समाज के विचार परिष्कार का काम करते हैं।

संघमित्रा अर्थात रानी मेडिकल की होनहार छात्रा है। उसे अन्याय बगावत की जोर शोर से की जाने वाली बसें कैरियर के साथ खिलवाड़ लगती है। उसका मानना है कि अगर आप में प्रतिभा है, टैलेंट है तो आपको कहीं भी स्कोप मिल जाएगा। अपनी पढ़ाई से मतलब रखने वाली संघमित्रा लैब में मुर्दे की चिरफाड देख कर बेहोश हो गई थी। वह हमेशा सचिन और सिद्धार्थ को समझा बुझाने का काम करती है। वह कहती है कि जो अपना केरियर नहीं बना सकता वह सोसाइटी और देश को क्या बनाएगा? सिद्धार्थ अपने नक्सलाइट ना होने का कारण संघमित्रा को मानता है। संघमित्रा को अपने पढ़ाई के साथ ही, भाई सचिन और टीवी के मरीज पिता की भी चिंता है। संघमित्रा अपराध और शोषण की जड़ हमारी जींस में मानती है इसीलिए वह इंसानी जींस पर शोध करना चाहती है।

सचिन उत्तरी बंगाल के गरीब किसानों के शोषण के विरोधी गतिविधियों से जुड़ा हुआ है। हड्डियों पर चढ़े चाम, धंसी पनाली आंखें, मैले-चिथडे, शोषित किसानों पर अन्याय हो रहा है। उन्हें विरोध करने का न तो तरीका पता है, न सलीका। "अज्ञान के कारण ही उन्हें सरकार, उद्योग, प्रशासन, साहूकार ने मनमाने ढंग से लूटा। वह यह तक नहीं जान पाया कि इसका विरोध न्यायिक तरीके से भी किया जा सकता है। वह सामूहिक तौर पर विरोध के रूप में हाथ उठाता है और व्यवस्था उसे उत्पाती तत्व समझ गोलियां मारती है।"[1] के खिलाफ 'खत्म करो' अभियान चल निकला। सचिन इसका हिस्सा बन जाता है। वह अपनी पढ़ाई और परीक्षाओं की तक फिक्र नहीं करता। संघमित्रा के समझाने पर एवं घर की जिम्मेदारियों की बात कहने पर भी वह अपने रास्ते से नहीं हटता। इसी के चलते सचिन को बागी करार दिया जाता है। पुलिस उसके पीछे पड़ जाती है। सिद्धार्थ जो सचिन और संघमित्रा का वैचारिक-भावनिक मित्र है, घरवाले उसे वापस बुलाते हैं। अपने बेगुनाह भाई को बचाने के लिए संघमित्रा बाहर निकलती है लेकिन वापस लौट कर नहीं आती। धीरे-धीरे हालात बिगड़ने लगते हैं। व्यवस्था दोनों भाई बहनों को नक्सलवादी करार देती है और आए

दिन उनके बारे में अफवाहें उड़ाई जाती है, " टेररिस्ट सचिन पर तरह-तरह के मुकदमों के फंदे लटक गए थे और संघमित्रा का नाम पार्टी के प्रवर संगठनकर्ताओं में गिना जाने लगा था। उसके विषय में तरह-तरह के मिथ प्रचलित हो चले थे... कि खून करने में उसे कैसे खुशी होती है!... अब फलां-फलां पूंजीपति, राजनेता, अफसर और पार्टी के विश्वासघातक उसकी सूची में है!... फलां-फलां घूसखोर अफसर और ऊँची फीस लेने वाले डॉक्टर और वकील को तो धमकी का खत भी आ चुका है!..."[2]

सिद्धार्थ को उसके पापा साइंस छुड़वाकर आर्ट्स करवाते हैं और वह यूनियन लीडरी, समाज सेवा और प्राध्यापकी करता है। इसके बावजूद वह संघमित्रा को भूल नहीं पाता। वह संघमित्रा को ढढने के लिए टाटा के जादूगोड़ा के जंगल, आंध्र के जंगल और धान के खेत, मध्यप्रदेश के बीहड़ छान चुका है। पर संघमित्रा कहीं नहीं मिल पाती। उसके जज पिताजी उसे 'क्राइम' पर शोध करने के लिए प्रोत्साहित करते हैं। वह शोध के लिए अपराध और अपराधी की प्रवृत्ति - प्रकार, व्यक्तिगत और परिवेशगत संस्कार, मनोवैज्ञानिक तथा समाज शास्त्रीय विवेचन संबंधी जानकारी एवं आंकड़े जुटाने के लिए एक थाने से दूसरे थाने के मुआयने करने लगता है। इसी बीच एक थाने के बाहर सचिन के पिता राखल बाबू उसे ढते हुए आते हैं।

वे बताते हैं कि अभी-अभी सचिन को इसी थाने में लाया गया है। यह थाना सिद्धार्थ के एस.पी. भाई के अधिकार क्षेत्र में था। वह राखल बाबू के साथ थाने में सचिन से मिलता है। उसके चेहरे पर पीटे जाने के निशान है। सिद्धार्थ के परिचय देने पर दरोगा सहानुभूति जताते हुए सचिन से कहता है, " तुम लोग कल के भविष्य हो। मुझे युवा शक्ति का इस प्रकार अपव्यय होना बिल्कुल पसंद नहीं। यह बिलावजह का खून-खराबा और अपराधकर्म छोड़कर आदर्श नागरिक क्यों नहीं बनते?"[3]

यहाँ सवाल यह उठता है कि आदर्श नागरिक एवं नागरिकता क्या है? अपने ही समाज के शोषित- पीड़ित वर्ग के लिए लड़ना क्या आदर्श नागरिकता नहीं है? जिसे सचिन जी रहा है और इसी की सजा भुगत रहा है। सचिन पुलिस व्यवस्था को अच्छी तरह जानता है। सिद्धार्थ का भाई बड़ा अफसर है इसीलिए दरोगा आदर्श की बातें कर रहे हैं। वर्ना किसी आम आदमी को यह सीधे मुँह बात तक नहीं करते। मन की कटुता के चलते सचिन उद्दंडता से जवाब देता है। दरोगा नाराज हो जाते हैं और बात जो बिगड़ी है और बिगड़ जाती है।

सिद्धार्थ राखल बाबू से कहता है कि मैं पूरी कोशिश करूंगा, आप चिंता मत कीजिए। लेकिन अपने एस.पी. भाई के घर गया तो वहाँ का माहौल ही अलग था। मंत्री महोदय के दौरे की सफलता की पार्टी चल रही थी। सारे पुलिस कर्मी मौज उड़ा रहे थे। सिद्धार्थ के 'क्राइम' पर रिसर्च करने की बात पता चलते ही उनकी बातें शुरू होती है। विदेशों के पुलिसों को मिलने वाली सुविधाएं और वेतन को लेकर शिकायतें होती है। सिद्धार्थ के दो टूक बात करने पर एक वरिष्ठ पुलिस अधिकारी हँसते हुए कहता है, " अमाँ यार, हमें पर सारी तोहमतें क्यों? हम तो नाचने वाले हैं, नचाने वाला कोई और है।"[4] और यह बात ठीक भी लगती है। खास बात यह है कि सिद्धार्थ शोध हेतु जिन कैदियों से मिला, वह भी यहीं बात कह रहे थे। पुलिस व्यवस्था के इसी रूप के बारे में चंदनमल नवल लिखते हैं, " भारत का आम नागरिक जानता और मानता है कि पुलिस भ्रष्ट है। पक्षपात करती है। शिक्षित और पैसे वालों के काम करती है। अनपढ़ और गरीब की नहीं सुनती है। भाई भतीजावाद और जातिवाद में विश्वास करती है। राजनीतिक दबाव में काम करती है। इसलिए पुलिस समाज के कमजोर वर्ग अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति के लोगों के मानवाधिकारों की रक्षा करने में विफल रही है।"[5]

सिद्धार्थ से बात करने वाला वरिष्ठ पुलिस अधिकारी अपनी दयनीय ता उजागर करते हुए कहता है, " ...एक ओर हमारी अक्षमता के लिए हमें कोसा जाता है, दूसरी ओर हमारे काम में टाँग लड़ाई जाती है। एक उदाहरण लीजिए- हमने किसी गुंडे को पकड़ा। अब हर गुंड किसी न किसी एम.एल.ए., एम.पी., सेक्रेटरी या मिनिस्टर वगैरा का आदमी, या आदमी का आदमी निकल आता है फोन पर फोन! आखिर वह बेदाग छूट जाता है... फिर क्या रह गई हमारी इज्जत! कभी-कभी तो ईमानदारी की कीमत हमें सस्पेंशन में चुकानी पड़ जाती है।"[6]

किंतु यहीं पुलिस गरीब-गुरबा, मजदूर-किसान मिल जाए तो उसकी खाल उधेड़ने में जरा भी कोताही नहीं बरतते। सत्ता के सामने दुम हिलाते हैं और सामान्य जनता के सामने शेर बन जाते हैं। सवाल यह भी है कि जब तक इनमें पेशेगत नैतिकता नहीं आएगी तब तक वे स्वयं भी प्रताड़ित होते रहेंगे और जनता को परेशान करते रहेंगे। ये बातें पुलिस विभाग का वरिष्ठ अधिकारी कह रहा है। जब सिद्धार्थ उनसे पूछता है, पुलिस अपने गलत कामों के लिए स्वयं जिम्मेदार नहीं है? तो सभी चुप हो जाते हैं।

पार्टी के कारण चाह कर भी सिद्धार्थ अपने भाई से बात नहीं कर पाता। पार्टी खत्म होते-होते बात करने की स्थिति पैदा होती है लेकिन उसी वक्त भाई को फोन आता है और उसे एक खून के सिलसिले में बाहर जाना पड़ता है। वह भी अपनी नौकरी से खुश नहीं है लेकिन उससे चिपके हुए है और उसके सारे लाभ भी उठा रहा है। सुबह भाई के आने पर सिद्धार्थ सचिन के निर्दोष और ईमानदार होने के साथ ही उसके रिहाई की बात करता है जिससे भाई उखड़ जाता है। वह कहता है कि तू कल से ही मेरी नौकरी खाने पर तुला है। वह सचिन को चोर-डकैत कहते हुए उसके केस में हस्तक्षेप करने से मना करता है।

सिद्धार्थ भाई से कुछ नहीं कहता। वह चुप हो जाता है। लेकिन वह जानता है कि यही भाई नेताओं के आगे पीछे करता रहता है। उनके हर सही गलत काम को अंजाम देता है। नेता का एक फोन आने पर नामी-गिरामी गुंडे को छोड़ दिया जाता है। उसे यह भी पता चल जाता है कि, " एक पूरे के पूरे नक्सल गांव को आग लगा देने के पुरस्कार स्वरुप उनकी तरक्की हुई थी।"[7] सत्ता के सामने दुम हिलाने वाले यह पुलिस अधिकारी अपनी सारी अकड़ और हेकड़ी निर्बलों को डराने के लिए दिखाते हैं। बाहुबलियों और दबंगों के सामने यह मसखरे बन जाते हैं।

सिद्धार्थ शोध हेतु न्यायालय से संबंधित आंकड़े जुटाते समय देखा कि न्याय व्यवस्था इतनी सुस्त और बेरुखी से चल रही है, मानो उसे किसी के जीने-मरने से कोई फर्क नहीं पड़ता। लोगों की जमीन, जायदाद ही नहीं, जिंदगी भी कानून की भेंट चढ़ती हो तो चढ़ जाए। उन्हें इससे क्या मतलब? महंगी और सुस्त न्यायिक व्यवस्था ने जनता को न्याय से कोसों दूर धकेल दिया है। संजीव इसी को वर्णन करते हुए लिखते हैं, " न्याय की प्रत्याशा में आगत... ऊबती, मुरझाती भीड़, मिठाइयों की दुकानों पर डकारती और ललकारती हुई नकली गवाहों की टोलियाँ, पुराने परचे और कागजातों के बंडल संभाले अहलमद और मुनीम, रंडियों के दलालों की तरह आसामी फाँसते हुए वकीलों के दलाल, काले कोट पहने हुए वकीलों की चहलकदमी...."[8] कुछ ऐसा ही चित्र है हमारे न्यायालयीन परिवेश का।

ऐसे ही वातावरण में सिद्धार्थ को ढूंढते हुए जर्जर राखाल बाबू हाँफते हुए आप पहुँचते हैं। टी.बी. के मरीज राखाल बाबू अपने बेटे और बेटी को व्यवस्था के चुंगल से छुड़ाना चाहते हैं। उनकी सारी उम्मीदें सिद्धार्थ पर टिकी है। सिद्धार्थ एक तो सचिन और संघमित्रा को अच्छे से जानता है और दूसरे उसके भाई पिता और जीजा सत्ता की अधिकार प्राप्त पदों पर आसीन हैं। राखाल बाबू ने सचिन का मुकदमा सिद्धार्थ के पिता के पास आए, ऐसी व्यवस्था की है। वे चाहते हैं कि अब सिद्धार्थ बाकी की जिम्मेदारी उठाएँ। वे अपने निर्दोष बेटे को निर्दोष देखना चाहते हैं।

सिद्धार्थ उसी दिन अपने पापा के पास जाता है। पिताजी सिद्धार्थ के शोध के काम से प्रसन्न है। सिद्धार्थ के अनुभव को वह न्याय व्यवस्था के खिलाफ होने के बावजूद श्री करते हैं। सिद्धार्थ के दृष्टिकोण का समर्थन करते हुए कहते हैं, " देशभर में जाने कितना अन्याय होता है और उसमें से जाने कितनी आप आते हैं हमारे पास और जाने कितनों का सही फैसला कर पाते हैं हम! अब देखो, वकील न्याय के दूध दूध है और इनका चरित्र...! जो जितनी भयंकर अपराधी को, जितनी जल्दी निरपराध सिद्ध कर दे वह उतना ही सफल वकील है। फिर जज का दिल और दिमाग, न्याय की व्यवस्था भी कम करामाती नहीं है। एक ओर से जो हार जाए, दूसरी कोर्ट से जीत जाता है। पीनल कोड में कई धाराएं तक त्रुटिपूर्ण है।"[9]

यही सही मौका समझकर सिद्धार्थ अपने पापा को बताता है कि पच्चीस तारीख को आपकी अदालत में जिसका मुकदमा पेश होने वाला है, वह अपराधी नहीं है। मानवता के प्रति पूरी तरह से निष्ठावान युवक है। लेकिन मुकदमा पेशी से पहले ही सिद्धार्थ के पापा भी मान चुके हैं कि वह युवक नक्सलवादी है अर्थात अपराधी है। इस केस में कुछ कर सकने की अपनी और सहायता को प्रकट करते हुए कहते हैं, " हम जिसे न्याय कहते हैं, वह तथ्य-सापेक्ष है, सत्य सापेक्ष नहीं है। तथ्य का प्रमाण स्वयं में सामर्थ्य-सापेक्ष है, अतः निर्णय लचीला होता है। हमारा तो यूँ जान लो, बस एक दायरा होता है.... पुलिस एफ.आई.आर. प्रस्तुत करती है, चार्जशीट पेश करती है, गवाह होते हैं, अपराध के सबूत, अभियुक्त की सफाई का दौर आता है, वकील होते हैं. कानून की किताबें होती हैं। इन सबमें से परत-दर-परत जो निष्कर्ष छन-छनकर आता है, हम वही निर्णय तो दे सकते हैं... और फिर तुम जिसकी सिफारिश करने आए हो, उसका तो मुकाबला ही सत्ता से हैं, जो हमेशा न्यायपालिका पर हावी रहती है।"[10]

वे सिद्धार्थ को समझाते हैं कि सचिन की तरहा ही तुम्हारे ऊपर भी सीबीआई की कार्यवाही हो चुकी होती, अगर गृह विभाग में कार्यरत सचिव जीजा नहीं बचाते। सत्ता संपन्न परिवार से होने के कारण ही सिद्धार्थ बच गया था और सत्ता विहीन परिवार का होने से सचिन कानून की निगाह में गुनहगार बन चुका था।

मुकदमे के निर्णायक दिन भी सचिन अपने पक्ष में कोई सफाई नहीं देता। और कहीं भी तो किसके सामने? उस व्यवस्था के सामने जिसके लिए गरीब का सबसे बड़ा अपराध गरीब होना है। जो उसे पहले से ही अपराधी मान चुका है, उस व्यवस्था के सामने वह क्या सफाई देता? गैर बराबरी की इन व्यवस्थाओं को ललकारते हुए सचिन बेबाक टिप्पणी करता है, " मुझे इस पूंजीवादी, प्रतिक्रियावादी, न्याय व्यवस्था में विश्वास नहीं है। आम जनता भी जिसे न्याय का मंदिर कहती है, वह लुटेरों, पंडों और जूता-चोरों से भरा पड़ा है... गीता तथा गंगाजल की कसमें खाकर झूठी गवाहियां देने वाले गवाह... यह लाल थाने, लाल जेलखाने और लाल कचरिया... इन पर कितने बेकसूरों का खून पुता है। वकीलों और जजों का काला गाउन न जाने कितने ख़ून के धब्बों को छुपाए हुए है! परिवर्तन के महान रास्ते में एक मुकाम ऐसा भी आएगा, जिस दिन इन्हें अपना चरित्र बदलना होगा, वरना इनकी रोबीली बुलंदियाँ धूल चाटती नजर आएँगी।"[11]

वकील 'कंटेंप्ट ऑफ कोर्ट' कहते हुए चिल्लाता है। क्या सही में न्याय व्यवस्था की इज्जत इतनी सस्ती है कि वह अपनी आलोचना तक बर्दाश्त नहीं कर पाती? लोगों के न्याय व्यवस्था के प्रति के विचार उसे अनादर लगते हैं? क्या न्याय व्यवस्था का यही रूप संविधान और संविधान निर्माताओं को अपेक्षित था? क्या न्याय व्यवस्था प्रताड़ित, शोषित लोगों के समय, संपत्ति का अनादर नहीं करती?

सचिन को सजा सुनाई जाती है और पुलिस उसे जेल ले जाती है। राखाल बाबू फफककर रो पड़ते हैं। अपने बेटे के निर्दोष होने को वे साबित नहीं कर पाते और इसी सदमे में उनकी मौत हो जाती है। सचिन जेल जाते समय रास्ते में पेशाब के बहाने पुलिस के हाथों से छूट कर जंगल में भाग जाता है। राखाल बाबू की अंत्येष्टि में सचिन आएगा, यह सोचते हुए पुलिस दो दिन तक सादे लिबास में पहरा देती रहती है। जब लाश चढ़ने लगी तो उनकी अंत्येष्टि सैनिटोरियम वालों ने कर दी। अपनी निर्दोष बेटे को निर्दोष देखने की राखाल बाबू की अंतिम इच्छा पूरी नहीं हो पाती।

सिद्धार्थ अपने शोध के लिए नारी निकेतन, बाल अपराध, सुधार ग्रह, रिफॉर्मेटरी होते हुए कारागृह पहुंचता है। उसे पता चलता है कि सेंट्रल जेल में सचिन नाम का बंगाली युवक और संघमित्रा नाम की औरत ट्रांसफर होकर आए हैं। सिद्धार्थ शोध के लिए सेंट्रल जेल जाने की अनुमति प्राप्त करता है। लेकिन काफी ढूंढने पर भी उसे वहां न तो संघमित्रा मिल पाती है न ही सचिन। मिलते भी कैसे! उसे नक्सली सेल जाने की मनाही कर दी गई थी। लेकिन जेल का मुआयना करते हुए वह यह जान गया था कि जेल के बाहर का वर्ग विभाजन, वर्ण विभाजन जेल में भी मौजूद है। बल्कि वह जेल में और अधिक मुखर है। राजनीतिक कैदी, धाकड़ दादा, यहां ऐशों-आराम की जिंदगी जीते हैं और सामान्य कैदी उनकी गुलामी में पीसते रहते हैं।

सिद्धार्थ जेल में अपना काम कर रहा था, तभी एक घटना घटित हुई। दिवाली की रात थी। बाहर आतिशबाजियां छूट रही थी। पर जेल में भी? प्रतिबंधित सेल के कैदी सैलाब बनकर बाहर निकल रहे थे। पुलिस के दस्ते के साथ वे भीड़ गए। अंदर का फाटक तोड़कर नक्सली सदर फाटक पर बम बरसाने लगे थे। लेकिन तभी अन्य कैदियों की विशाल फौज हाथ में बंदूक लिए नक्सली कैदियों पर टूट पड़ती है और मारपीट का ऐसा मंजर सामने आता है कि चारों और खून और लाशें बिखरी दिखाई देने लगती है। नक्सली कैदियों को ढोर-डांगर की तरह मारते-पीटते हुए कैदी वापस लौट जाते हैं। यह भयानक दृश्य सिद्धार्थ अपनी आंखों से देखता है। चोर, व्यभिचारी, सजायाफ्ता कैदी बुद्धिजीवी नक्सलियों को पीट रहे थे। कैदियों को नक्सलियों के खिलाफ उकसाया किसने? उनके हाथ में बंदूक ए कहां से आई? नक्सलियों को पीटने का अधिकार कैदियों को किसने दिया और सबसे महत्वपूर्ण सवाल सेंट्रल जेल में बम कैसे आए?

इस संदर्भ में सेंट्रल जेल का अधीक्षक कहता है, " पुलिस की जात साली ठीक ही घुस के लिए बदनाम है। जरा-से पैसों के लिए साले बिक गए, बरना जहां परिंदा तक पर नहीं मार सकता, वहां बम आ जाए"[12] अधीक्षक अपनी ही व्यवस्था की सेंधमारी और भ्रष्टाचारी स्थिति की पोल खोलता है।

इस घटना से आहत सिद्धार्थ टाइफाइड का शिकार बन जाता है। जेल अधीक्षक सिद्धार्थ के पापा के कारण बच जाता है। शोध के अंतिम काट के लिए सिद्धार्थ को नक्सली सेल में जाने की इजाजत मिल जाती है। वह सचिन को देखता है पर पहचान नहीं पाता। जंजीरों से जकड़े हाथ-पाव, बढ़ी हुई दाढ़ी-मूछे, कोटरों में धंसी आंखें, बेतरतीब बड़े नाखून, कुल मिलाकर कोड़ियों की शक्ल में उसे ढाला गया था। रक्षक व्यवस्था द्वारा छले व्यक्ति के मोहभंग के जीते-जागते उदाहरण के रूप में सचिन को देखा जा सकता है। उसके अंदर इतनी कटुता भरी थी कि वह सिद्धार्थ से भी सीधे मुंह बात नहीं करता।

सिद्धार्थ सचिन की बातों को हंसकर टालते हुए उसके 'क्राइम'पर शोध करने की बात बताता है। पूरी गंभीरता से सचिन से सवाल करता है, " लोग व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए या अत्याचार के खिलाफ अस्त्र उठाते हैं, तुम लोग सामूहिक स्वार्थ और एक्सप्लायटेशन के खिलाफ... मगर करते हो तुम भी अपराधी ही। क्या हिंसा से हिंसा को और नफरत से नफरत को दबाया जा सकता है।"[13]

सिद्धार्थ का यह सवाल ही सचिन को बेमतलब का लगता है। हिंसा से हिंसा को और नफरत से नफरत को दबाया न जा सके लेकिन हिंसा या नफरत को अपनाने की जरूरत क्यों पड़ती है? हिंसा और नफरत का जवाब सकारात्मकता, सृजनात्मकता से दिया जा सकता है। लेकिन उसके लिए जरूरत है, आगे वाली के सीने में भी दिल हो, नजरों में शर्म हो और इस पर हमारी वर्तमान व्यवस्था खरी नहीं उतरती। जो व्यवस्थाएं आम जन के जान-माल की रक्षा के लिए बनाई गई है, वह व्यवस्था ही बाहुबलियों, सामंतों, जमींदारों के साथ मिलकर दलित, आदिवासियों के शोषण में संलग्न है।

नंदिनी सुंदर और अन्य बनाम छत्तीसगढ़ राज्य मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा 15 जुलाई, 2011 को सुनाएं फैसले में निराशा जताते हुए कहा, " प्रतिभागियों ने लगातार इस बात पर जोर दिया कि राज्य के पास एक मात्र यही विकल्प है कि वह दमन के सहारे शासन करें, एक ऐसी समाज व्यवस्था स्थापित करें जिसमें हर व्यक्ति को संदेह की निगाह से देखा जाता हो। मानवाधिकार

की बात करने वाले हर व्यक्ति को संदिग्ध और माओवादी माना जाए।"[14] व्यवस्था द्वारा ऐसी स्थिति बनाई जाए तो इससे सचिन जैसे बागी नहीं उपजेंगे तो और क्या होगा?

सवाल तो यह भी है कि सिद्धार्थ के शोध को व्यवस्था द्वारा कितनी गंभीरता से लिया जाएगा। सचिन को सिद्धार्थ का कैदियों से इस तरह मिलना, उनका मजाक उड़ाना लगता है। गुस्से के मारे वह फाइल फेंक देता है। सारे कागज बिखर जाते हैं। जेल के अधीक्षक की बातों का भी उस पर कोई असर नहीं होता। वह कहते हैं कि तुम्हारे अपराधों के कारण कोर्ट से कभी भी फांसी का फरमान आ सकता है। सचिन में एक प्रकार की उज्जड़ता का संचार हो चुका है। वह किसी को कुछ नहीं समझता। कुछ पल उनके लिए सचिन का बर्ताव अनाकलनीय तथा अपराधिक मानसिकता वाला लगता है। लेकिन हमें इसके कारणों की खोज करनी होगी। रचनाकार संजीव इसी खोज का हिमायती है।

इस घटना से आहत सिद्धार्थ जेल से बाहर आ जाता है। वह वापस जाना चाहता है। पर जेलर के आने पर पता चलता है कि सचिन के फांसी का फरमान आ चुका है। जेलर के कहने पर सिद्धार्थ सचिन से मिलने वापस आता है। तब सचिन स्वयं ही बात करना शुरू करता है। सिद्धार्थ संघमित्रा के बारे में जानना चाहता था। सचिन उसे बताता है कि, " शी हैड बीन ब्रूटली बूचर्ड ला◌ॅ◌ंग एगो।

उसके गुप्तांग में रूल घुसाकर... मथकर मारा गया।

मेडिकल की मेधावी छात्रा, जेनेटिक्स पर रिसर्च करने का दम भरने वाली रानी, एक सामान्य पुलिस के हाथों... क्राइम। लगा, अभी-अभी क्रौंचवध हुआ है। फिजा में दूर-दूर तक दहशत भरी दर्दनाक चीखें भर उठी है।"[15]

सचिन के वाजिब प्रश्न के लिए, अपनी पक्षधरता की स्वतंत्रता के लिए क्या कुछ नहीं खोना पड़ा! टी.बी. से खांसता बाप, हमसफर, हम साथी बहन व्यवस्था के सूली पर चढ़ी और उसका अपना वजूद भी एक अनसुलझे प्रश्न सा फांसी के फंदे पर झूलने वाला है। उसकी उज्जडता, अंतहीन क्रोध, व्यवस्था समर्थकों के प्रति घृणा, सब कुछ यहीं से जन्म लेता है। क्रोध और घृणा उसके सीने में पलती है, बढ़ती है और व्यवस्था के मुंह पर अपने होने का प्रमाण एक प्रश्नचिन्ह छोड़ जाती है।

सिद्धार्थ ट्रेन से वापस जा रहा है लेकिन सब कुछ गंवाकर। संघमित्रा के मौत ने उसे अंदर तक झकझोर दिया है। अपराध की व्यवस्था को उसने इतने नजदीक से देखा और जाना पहचाना है कि उसे अपनी शोध की अपूर्णता खलने लगती है। उसी प्लेटो के कथन की याद आती है- अपराध भी प्रतिभा संपन्न व्यक्ति ही कर सकते हैं। उसका दिमाग नाना प्रकार की विरोधी विचारों से बजबजा उठता है। उसे अपनी सार्थकता ही सवालों की ढेरों में फंसी दिखाई देती है- " क्या है मेरी और मेरे शोध की सामर्थ्य और सीमा? अपराध की लपलपाती बर्बर लपटों में... उन्हीं लपटों में, जिनमें आहुति बनकर लाखों करोड़ों निरपराध, निष्ठावान तेजस्वी आत्माएँ, मेरा मित्र, मेरी रानी तक समा चुके हैं, अपने हाथ सैकने के सिवा यह है क्या? इससे बढ़कर गर्हित अपराध और क्या हो सकता है? कर सकूँगा मैं सत्ता, व्यवस्था और समाज के तमाम अपराधी पुर्जो को जेल में?"[16]

सिद्धार्थ अपनी सारी शोध सामग्री नदी के पानी में फेंक देता है। कहानी का अंत उदास एवं निराशाजनक है, जो जीवन की वास्तविकता है। अन्याय के खिलाफ सचिन का मुखर होना कहानी का जीवन सूत्र है। अन्याय का मुकाबला आवाज उठाने से ही आरंभ होता है। आवाज उठाना न्यायिक भी हो सकता है और स्वाभाविक भी। शंकर शेष के नाटक 'पोस्टर' का कीर्तनकार इसी बात को स्पष्ट करता है, "चुप्पी से हम बच भले ही जाए लेकिन इससे अत्याचारी की ताकत बढ़ती जाती है। हमारे अन्याय सहने के संस्कार बढ़ते जाते हैं और अत्याचार करने का उसका साहस। बंधु जनों धीरे-धीरे अत्याचार सहने का भी एक तंत्र उभरता है उसे कोई न कोई खूबसूरत दार्शनिक नाम दिया जाता है। एक दिन ऐसा आता है कि हमारी आत्माओं में ढेर सारी बर्फ इकट्ठी हो जाती है। हम इतनी अपाहिज होते जाते हैं कि विरोध करना भी हमें पाप लगने लगता है..."[17]

सचिन का बगावत या विरोध का तरीका स्वाभाविक तथा न्याय संगत होने के बावजूद न्याय सम्मत नहीं था। लोगों की लड़ाई लड़ने से काम नहीं चलेगा बल्कि लोगों को जगा कर लड़ने के लिए प्रेरित करना होगा। किसी भी समस्या को हम जन समस्या बनाकर आगे लाएंगे तभी वोट की राजनीति, राजनीतिक सत्ता के लिए ही सही पर नरमी से जरूर पेश आएगी या लोक भावना के पक्ष में खड़ी हो जाएगी। आदिवासी उपन्यासकार विनोद कुमार अपने पात्र अरविंद के माध्यम से यहीं बात कहते हैं, " जरा घर से बाहर निकलिए। स्थिति इतनी भी निराशाजनक नहीं। नेता भले ही सत्ता की राजनीति में लगे हो, जनता अपने अधिकारों के लिए संघर्ष कर रही है। चांडिल क्षेत्र से जिंदल को खदेड़ दिया गया है। पोटका में भी उन्हें ठौर नहीं मिलने वाली। उड़ीसा के कलिंग नगर में टाटा के खिलाफ संघर्ष चल रहा है। पॉस्को के खिलाफ भी एक बड़ा जन आंदोलन है। सिंगुर और नंदीग्राम में जनता विकास के चालू मॉडल पर सवालिया निशान लगा रही है। इन आंदोलनों में कहीं माओवादी भी है लेकिन यह सभी आंदोलन मूलतः जन आंदोलन है, जिनमें जनता की व्यापक भागीदारी है।"[18]

इस रूप में हर संघर्ष भविष्य के लिए नई व्यवस्था का आगाज करता है।

निष्कर्ष:

'अपराध' कहानी में संजीव शोषण तंत्र के आपसी भाई भतीजावाद, सत्ता के गठजोड़ को दर्शाते हुए प्रशासन, पुलिस, न्याय व्यवस्था का भंडाफोड़ करते हैं। व्यवस्था सबसे पहले व्यवस्था को ही बचाती है इसे कहानी कई प्रसंगों के माध्यम से व्यक्त करती है। नक्सलवाद एवं आदिवासी समस्या को संजीव पूरी संजीदगी के साथ उठाते हैं। सचिन के चारित्रिक विकास में रचनाकार हस्तक्षेप करने से बचने का प्रयास करता है। संघमित्रा का चरित्र कहानी का संवेदन स्थल है जो कहानी की पूरी चेतना को झकझोर कर रख देता है। सचिन के स्वभाव की गांठे समझने में संघमित्रा का व्यक्तित्व सहायक साबित होता है। सचिन का फांसी के फंदे पर बिना डरे बिना समझौता किए झूल जाना एक ओर अन्याय के खिलाफ उठती आवाज को संबल देने का काम करता है तो दूसरी ओर व्यवस्था के सामने प्रश्न चिन्ह के रूप में अपना अस्तित्व बनाए रखता है। सिद्धार्थ की संघमित्रा से सचिन तक की यात्रा वैचारिक विकास, गठन एवं दृढ़ता की यात्रा है। सिद्धार्थ स्वयं लेखक है, चेतना का वाहक भी है और प्रसारक भी। संजीव 'अपराध' कहानी के माध्यम से पूरी इमानदारी और बेबाकी से नक्सलवाद की सृजनात्मकता तथा शोषण मुक्ति की भावना को व्यक्त करते हैं।

संदर्भ:

1) बयान, अंक अप्रैल, 2014- संपा. मोहनदास नैमिशराय- 5ए/30बी, पश्चिम विहार, नई दिल्ली-63, पृ.17
2) अपराध - संजीव - हिंदवी- https://www.hindwi.org/story/aparaadh-sanjeev-story पृ.3
3) वहीं, पृ.5
4) वहीं, पृ.5
5) बयान, अंक जुलाई, 2014- संपा. मोहनदास नैमिशराय- 5ए/30बी, पश्चिम विहार, नई दिल्ली-63, पृ. 23
6) अपराध - संजीव - हिंदवी- https://www.hindwi.org/story/aparaadh-sanjeev-story पृ.5
7) वहीं, पृ.7
8) वहीं, पृ.7
9) वहीं, पृ.7
10) वहीं, पृ.8
11) वहीं, पृ.8
12) वहीं, पृ.11
13) वहीं, पृ.12
14) समयांतर, अंक अगस्त, 2011- संपा. पंकज बिष्ट- 79ए, दिलशाद गार्डन, दिल्ली-95
15) अपराध - संजीव - हिंदवी- https://www.hindwi.org/story/aparaadh-sanjeev-story पृ.13
16) वहीं, पृ.14
17) शोध दिशा, अंक अक्टूबर-दिसंबर, 2021- संपा. गिरिशरण अग्रवाल- हिंदी साहित्य निकेतन, 16 साहित्य विहार, बिजनौर-246701, पृ. 238
18) रेड जोन- विनोद कुमार- अनुज्ञा बुक्स, वेस्ट गोरख पार्क, शाहदरा, दिल्ली-110032, पृ.393